International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 17-02-2026, Accepted: 19-03-2026, Published: 03-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 5-7

हानूश और कोणार्कः कलाकार, कृति और विनाश–बोध का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 सुरभि श्रीवास्तव
परीक्षा नियंत्रक, हिन्दी विभाग, सरस्वती उच्च शिक्षा एवं तकनीकी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय हिन्दी नाट्य–साहित्य में कलाकार और उसकी कृति के संबंध को लेकर गहन वैचारिक द्वंद्व देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध में भीष्म साहनी के नाटक 'हानूश' तथा जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क' का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कलाकार और उसकी कृति के संबंध, सत्ता के प्रभाव तथा सृजन और विनाश–बोध की समस्या का विश्लेषण करना है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि दोनों नाटकों में कलाकार की स्थिति अत्यंत जटिल और संघर्षपूर्ण है। 'हानूश' में कलाकार अपनी कृति को अमर मानते हुए उसके संरक्षण के लिए संघर्ष करता है और अपने व्यक्तिगत कष्टों की परवाह नहीं करता। वह अपनी कला के प्रति पूर्णतः समर्पित है और अंततः स्वयं पीड़ित होकर भी अपनी कृति को सुरक्षित रखता है। इसके विपरीत, 'कोणार्क' में विशु परिस्थितियों, सत्ता के दबाव और आंतरिक द्वंद्व के कारण अपनी ही कृति के प्रति मोहभंग का अनुभव करता है और उसका विनाश कर देता है। अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि दोनों नाटकों में सत्ता का स्वरूप दमनकारी है, जो कलाकार की स्वतंत्रता को बाधित करता है। किन्तु कलाकार की प्रतिक्रिया भिन्न है, एक ओर हानूश प्रतिरोध और त्याग का मार्ग अपनाता है, वहीं दूसरी ओर विशु निराशा और आत्म–विनाश की ओर अग्रसर होता है। अंततः यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'हानूश' कला की अमरता, आदर्शवाद और समर्पण का प्रतीक है, जबकि 'कोणार्क' यथार्थवाद, अस्तित्वगत संकट और सृजन के विनाश–बोध को अभिव्यक्त करता है। दोनों नाटक मिलकर कलाकार के जीवन के द्वंद्व, उसकी संवेदनाओं और उसकी सीमाओं का व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

मूल शब्दः कलाकार, कला, द्वंद्व, समर्पण, प्रतीक, आदर्श, संवेदना, सृजनात्मकता, सत्ता आदि

शोध का उद्देश्यः
- कलाकार और उसकी कृति के संबंध को स्पष्ट करना।
- दोनों नाटकों में सत्ता और कलाकार के संबंध का विश्लेषण करना।
- सृजन एवं विनाश–बोध की अवधारणा को समझना।
- दो कलाकारों की अपने कला के प्रति प्रतिक्रिया को स्पश्ट करना।
- विशु और हानूश के मानसिक अन्तर्द्वद्व का चित्रण।
- कलाकार, उसकी सृजनात्मकता और सत्ता के साथ उसके संबंध का प्रश्न का अध्ययन।
- कला और जीवन के बीच गहरे द्वंद्व का चित्रण। आदि।

शोध पद्धतिः
प्रस्तुत शोध 'हानूश' (भीष्म साहनी) और 'कोणार्क' (जगदीश चंद्र माथुर) के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। इस अध्ययन में मुख्यतः दोनों नाटकों में कलाकार, कृति और विनाश–बोध के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन किया गया है। यह शोध वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक प्रकृति का है। इसमें दोनों नाटकों की विषयवस्तु, पात्र–चित्रण, विचारधारा तथा दार्शनिक आधार का विश्लेषण करते हुए उनके बीच समानताओं और भिन्नताओं को स्पष्ट किया गया है। इस अध्ययन में मुख्यतः प्राथमिक स्रोत के रूप में हानूश और कोणार्क नाटक के मूल पाठ का प्रयोग किया गया है और द्वितीयक स्रोतों का भी प्रयोग किया गया है, जिनमें– हिन्दी नाटक पर आधारित आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध–पत्र, लेख और संदर्भ पुस्तकें आदि हैं।

प्रस्तावना
साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि कलाकार के अन्तर्द्वद्व का भी सशक्त माध्यम है। हिन्दी नाटककारों ने विशेष रूप से कलाकार की स्थिति, उसकी सामाजिक भूमिका और सत्ता के साथ उसके संबंध को गहराई से चित्रित किया है। 'हानूश' और 'कोणार्क' दोनों ही नाटक इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये कलाकार के अस्तित्व और उसकी कृति के मूल्य पर प्रश्न उठाते हैं। हिन्दी नाट्य–साहित्य में कलाकार, उसकी सृजनात्मकता और सत्ता के साथ उसके संबंध का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल रहा है। आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने इस विषय को केवल सौंदर्य–बोध तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक संदर्भों में भी परखा है। विशेषतः साठोत्तर हिन्दी नाटक में कलाकार का व्यक्तित्व एक ऐसे संघर्षशील चरित्र के रूप में उभरकर सामने आता है, जो अपनी सृजनात्मक स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और अस्तित्व की रक्षा के लिए निरंतर संघर्षरत रहता है। इसी संदर्भ में भीष्म साहनी का 'हानूश' तथा जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क' हिन्दी नाट्य–साहित्य की दो महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जो कलाकार और उसकी कृति के संबंध को दो भिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत करती हैं। दोनों नाटकों का मूल स्वर कलाकार के आत्म–संघर्ष, सत्ता के दमन और सृजन की नियति के इर्द–गिर्द घूमता है, किंतु इनके निष्कर्ष एक–दूसरे के विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। 'हानूश' में कलाकार अपनी कृति को अपने अस्तित्व का विस्तार मानता है। उसकी रचना उसके जीवन का उद्देश्य और साधना का चरम रूप है, जिसे वह किसी भी परिस्थिति में नष्ट नहीं होने देना चाहता। यहाँ कला के प्रति एक गहरा आदर्शवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, जहाँ कलाकार अपनी व्यक्तिगत पीड़ा, शारीरिक क्षति और सामाजिक उपेक्षा के बावजूद अपनी कृति की रक्षा के लिए समर्पित रहता है। इस प्रकार, 'हानूश' में कलाकार और कृति का संबंध एकात्मता और अमरत्व की अवधारणा पर आधारित है।
इसके विपरीत 'कोणार्क' में विशु का चरित्र एक ऐसे कलाकार का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी ही सृजनात्मक प्रक्रिया के भीतर उत्पन्न अंतर्विरोधों और बाह्य परिस्थितियों के दबाव से टूट जाता है। विशु की कृति, जो कभी उसकी साधना और गौरव का प्रतीक थी, अंततः उसके लिए बोझ और विडंबना का कारण बन जाती है। परिणामस्वरूप, वह स्वयं अपनी ही रचना के विनाश का निर्णय लेता है। यहाँ कला और जीवन के बीच गहरा द्वंद्व उपस्थित होता है, जहाँ कलाकार अंततः जीवन की जटिलताओं

के आगे अपनी कला का त्याग कर देता है। इन दोनों नाटकों के माध्यम से यह प्रश्न उभरकर सामने आता है कि क्या कलाकार की कृति उससे अधिक महत्वपूर्ण है, या फिर जीवन और मानवीय संबंधों की वास्तविकता कला से बड़ी है? 'हानूश' इस प्रश्न का उत्तर कला के पक्ष में देता है, जबकि 'कोणार्क' जीवन की प्राथमिकता को स्थापित करता है। इस प्रकार, एक ओर जहाँ 'हानूश' में कला की अमरता और आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है, वहीं 'कोणार्क' में यथार्थवादी दृष्टिकोण और अस्तित्वगत संकट की अभिव्यक्ति मिलती है।

वर्तमान शोध आलेख का उद्देश्य इन दोनों नाटकों में कलाकार और कृति के संबंध का तुलनात्मक अध्ययन करना है, विशेषतः इस तथ्य के आलोक में कि 'हानूश' का कलाकार अपनी कृति को नष्ट नहीं होने देता, जबकि 'कोणार्क' का विशु स्वयं अपनी कृति का विनाश कर देता है। इस विरोधाभासी प्रवृत्ति के माध्यम से न केवल कलाकार के मनोविज्ञान का विश्लेषण किया जाएगा, बल्कि यह भी समझने का प्रयास किया जाएगा कि सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियाँ कलाकार के सृजनात्मक निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। अतः यह अध्ययन केवल दो नाटकों की तुलना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कलाकार के अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता, उसकी सामाजिक भूमिका तथा कला की नियति जैसे व्यापक प्रश्नों को भी स्पर्श करता है। इस दृष्टि से यह विषय न केवल साहित्यिक, बल्कि दार्शनिक और सांस्कृतिक विमर्श के स्तर पर भी अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है।

'हानूश' और 'कोणार्क' नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

भीष्म साहनी के नाटक 'हानूश' तथा जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क' हिन्दी नाट्य–साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जिनमें कलाकार और उसकी कृति के संबंध को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। दोनों नाटकों में कलाकार के जीवन, उसकी सृजनात्मकता, सत्ता के साथ उसके संबंध तथा आंतरिक द्वंद्व को केंद्र में रखा गया है, किंतु उनकी दृष्टि और निष्कर्ष एक–दूसरे से भिन्न हैं। 'हानूश' का नायक एक समर्पित कलाकार है, जो अपनी कृति (घड़ी) को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानता है। उसके लिए कला केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि आत्मा की अभिव्यक्ति है। वह अपनी रचना को अमर मानता है और उसके संरक्षण के लिए हर प्रकार का त्याग करने को तत्पर रहता है। नाटक में सत्ता कलाकार की प्रतिभा का उपयोग करती है, परंतु अंततः उसे नियंत्रित और नष्ट करने का प्रयास भी करती है। इसके बावजूद हानूश संघर्ष का मार्ग अपनाता है और अपनी कृति को बचाने के लिए अपनी आँखों तक का बलिदान दे देता है। इस प्रकार, यहाँ कलाकार अपनी कृति के संरक्षण हेतु स्वयं को नष्ट कर देता है, पर अपनी कला को जीवित रखता है। यह दृष्टिकोण आदर्शवादी है, जिसमें कला की अमरता और कलाकार के समर्पण को महत्त्व दिया गया है। इसके विपरीत, 'कोणार्क' का नायक विशु एक महान शिल्पी है, जो मंदिर के निर्माण में अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा और श्रम समर्पित करता है। उसकी कृति उसकी साधना का परिणाम है, किन्तु परिस्थितियाँ, सत्ता का दबाव और उसके व्यक्तिगत जीवन के द्वंद्व उसे भीतर से विचलित कर देते हैं। विशु के सामने कला और जीवन के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें वह संतुलन नहीं बना पाता। धीरे–धीरे वह अपनी ही कृति के प्रति मोहभंग का अनुभव करता है और अंततः उसे नष्ट कर देता है। यहाँ कलाकार अपनी सृजनात्मकता के प्रति निराशा और विडंबना का शिकार होकर विनाश का मार्ग चुनता है। यह दृष्टिकोण यथार्थवादी और त्रासद है, जिसमें कलाकार की आंतरिक टूटन और अस्तित्वगत संकट को प्रमुखता दी गई है। दोनों नाटकों में सत्ता की भूमिका दमनकारी है, जो कलाकार की स्वतंत्रता को सीमित करती है। अंतर केवल कलाकार की प्रतिक्रिया में है– 'हानूश' में कलाकार प्रतिरोध करता है और अपनी कृति की रक्षा करता है, जबकि 'कोणार्क' में कलाकार टूटकर आत्म–विनाश और कृति–विनाश की ओर बढ़ता है।

अतः स्पष्ट है कि 'हानूश' और 'कोणार्क' कलाकार और उसकी कृति के संबंध को दो विपरीत ध्रुवों पर प्रस्तुत करते हैं। 'हानूश' कला–संरक्षण, त्याग और आदर्शवाद का प्रतीक है, जबकि 'कोणार्क' जीवन की जटिलताओं, यथार्थवाद और सृजन के विनाश–बोध को अभिव्यक्त करता है। दोनों मिलकर कलाकार के अस्तित्व, उसकी संवेदना और उसकी सीमाओं का व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भीष्म साहनी के 'हानूश' और जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क' हिन्दी नाट्य–साहित्य में कलाकार और उसकी कृति के संबंध को दो भिन्न वैचारिक ध्रुवों पर स्थापित करते हैं। यद्यपि दोनों नाटकों का मूल विषय कलाकार का संघर्ष, उसकी सृजनात्मकता और सत्ता के साथ उसका संबंध है, तथापि इनकी परिणति और दृष्टिकोण में मौलिक अंतर दिखाई देता है। 'हानूश' में कलाकार अपनी कृति को अपने अस्तित्व का अभिन्न अंग मानता है। उसकी रचना उसके जीवन का सार, उसकी साधना का चरम और उसकी आत्मा का विस्तार बन जाती है। इसलिए वह किसी भी परिस्थिति में अपनी कृति को नष्ट नहीं होने देता। यहाँ कलाकार का त्याग, समर्पण और संघर्ष इस तथ्य को स्थापित करता है कि कला व्यक्ति से परे जाकर एक शाश्वत सत्ता का रूप धारण कर लेती है। हानूश का अंधत्व केवल उसकी शारीरिक पराजय नहीं, बल्कि कला की नैतिक विजय का प्रतीक है। इस प्रकार, यह नाटक कला की अमरता, कलाकार की प्रतिबद्धता और सृजन की गरिमा को उच्चतम स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। इसके विपरीत 'कोणार्क' में विशु का चरित्र कलाकार के एक ऐसे रूप को सामने लाता है, जो अपनी ही सृजनात्मक प्रक्रिया के अंतर्विरोधों और बाह्य परिस्थितियों के दबाव में टूट जाता है। विशु के लिए उसकी कृति, जो कभी उसकी साधना और गौरव का प्रतीक थी, अंततः उसके जीवन–संघर्ष और मानसिक विडंबना का कारण बन जाती है। उसका अपनी ही कृति को नष्ट करना एक साधारण क्रिया नहीं, बल्कि गहरे अस्तित्वगत संकट और आत्ममंथन का परिणाम है। यह विनाश एक प्रकार से उसके लिए मुक्ति का माध्यम बनता है, जिसमें वह कला और जीवन के द्वंद्व से बाहर निकलने का प्रयास करता है। भीष्म साहनी के 'हानूश' और जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क' का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि दोनों नाटक कलाकार और उसकी कृति के संबंध को अत्यंत गहन और बहुआयामी रूप में प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि दोनों कृतियों का मूल संदर्भ कलाकार का संघर्ष और सत्ता का दबाव है, फिर भी उनके निष्कर्ष एक–दूसरे के विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। यही विरोधाभास इन दोनों नाटकों को विशेष रूप से महत्वपूर्ण बनाता है।

'हानूश' में कलाकार का दृष्टिकोण आदर्शवादी है। हानूश अपनी कृति को केवल एक वस्तु नहीं, बल्कि अपनी आत्मा का विस्तार मानता है। उसके लिए कला जीवन से भी अधिक मूल्यवान है। वह अपनी रचना की रक्षा के लिए हर प्रकार का त्याग करने को तत्पर रहता है, यहाँ तक कि अपनी दृष्टि (आँखों) का बलिदान भी दे देता है। इस नाटक में यह संदेश निहित है कि सच्चा कलाकार अपनी कृति के माध्यम से अमर हो जाता है, और कला का मूल्य किसी भी भौतिक या व्यक्तिगत हानि से अधिक होता है। हानूश का संघर्ष कलाकार की अडिग आस्था, समर्पण और प्रतिरोध का प्रतीक बन जाता है। इसके विपरीत, 'कोणार्क' में विशु का चरित्र यथार्थवादी और त्रासद दृष्टिकोण को अभिव्यक्त

करता है। विशु भी एक महान कलाकार है, किन्तु वह जीवन की जटिलताओं, सामाजिक दबावों और सत्ता की कठोरता के सामने स्वयं को असहाय पाता है। उसके भीतर कला और जीवन के बीच गहरा द्वंद्व उत्पन्न होता है, जिसमें वह संतुलन स्थापित नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप, वह अपनी ही कृति के प्रति मोहभंग का अनुभव करता है और अंततः उसका विनाश कर देता है। यह विनाश केवल बाहरी नहीं, बल्कि उसके आंतरिक विघटन का भी प्रतीक है। विशु का यह निर्णय कलाकार के अस्तित्वगत संकट, उसकी सीमाओं और उसकी मानसिक पीड़ा को उजागर करता है। दोनों नाटकों में सत्ता का स्वरूप दमनकारी और स्वार्थपूर्ण है, जो कलाकार की स्वतंत्रता और सृजनशीलता को बाधित करता है। किन्तु जहाँ हानूश इस दमन के विरुद्ध संघर्ष करता है और अपनी कृति को बचाने में सफल होता है, वहीं विशु इस दबाव के सामने टूट जाता है और आत्म–विनाश का मार्ग चुनता है। इस प्रकार, हानूश प्रतिरोध और आशा का प्रतीक है, जबकि विशु निराशा और विघटन का प्रतिनिधि बन जाता है।

इन दोनों नाटकों का संयुक्त अध्ययन यह भी दर्शाता है कि कलाकार और उसकी कृति का संबंध केवल सृजन तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित होता है। 'हानूश' जहाँ कला की अमरता, आदर्शवाद और मानवीय दृढ़ता को स्थापित करता है, वहीं 'कोणार्क' जीवन की कठोर वास्तविकताओं, अस्तित्वगत संकट और सृजन के विनाश–बोध को सामने लाता है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये दोनों नाटक मिलकर कलाकार के अस्तित्व के दो सत्य प्रस्तुत करते हैं– एक, जहाँ कलाकार अपनी कृति के माध्यम से अमरता प्राप्त करता है और दूसरा, जहाँ वही कलाकार परिस्थितियों के दबाव में अपनी ही सृजनात्मकता का विनाश कर देता है। यही द्वंद्व कलाकार के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी और उसकी सबसे बड़ी सच्चाई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 माधव सोनटक्के– 1994– समकालीन नाट्य विवेचन– विकास प्रकाशन
2. गिरीश रस्तोगी– 1982– समकालीन हिन्दी नाटककार– इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
3. दशरथ ओझा– हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास– राजपाल एंड संस– दिल्ली
4. बच्चन सिंह– हिन्दी नाटक– राधाकृश्ण प्रकाशन– दिल्ली
5. जगदीश चन्द्र माथुर– कोणार्क– राजकमल प्रकाशन
6. भीश्म साहनी– हानूश– राजकमल प्रकाशन
7. सं0 डॉ0 नरेन्द्र मोहन– समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच
8. डॉ0 हर्शबाला भार्मा– समकालीन हिन्दी नाटक रचनात्मकता का सजग हस्तक्षेप
9. डॉ0 सुरभि श्रीवास्तव– 2026– साठोत्तर हिन्दी नाटकों मे विद्रोही चेतना का स्वरूप– हंस पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली आईएसबीएन नं0– 978–93–92348–83–9